ईर्यासमिति और पद-यात्रा

—डा. संजवी प्रचण्डिया 'सोमेन्द्र'
(एम० काम०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०)

शब्दों में अर्थों की अभिव्यंजना हुआ करती है। शब्दों का सही प्रयोग ही उस अर्थ की आत्मा को उजागर करता है। यहाँ हम प्रस्तुत विषय 'ईर्यासमिति और पद-यात्रा' पर चर्चा करना चाहेंगे। प्रस्तुत विषय का शिल्प दो शब्दों के योग का सहयोग है। एक 'ईर्या—समिति' और दूसरा 'पद-यात्रा'। ईर्यासमिति क्या है ? तथा पद-यात्रा से इसका क्या सम्बन्ध है ? क्या उपयोगिता है ? यही जानकारी विषय की अहं स्थिति को उजागर करती है।

चलने-फिरने से लेकर बोल-चाल, आहार-ग्रहण, वस्तुओं के उठाव-धराव, मल-मूत्र का निक्षेपण, सफाई-सुथराई आदि तक का समूचा कर्म-कौशल जिसमें प्राणी मात्र किंचित् आहत न हो, बस इसी स्थिति का नाम समिति है। इसीलिए राजवार्तिक में स्पष्ट लिखा है—"सम्यगितिः समितिरितिः" अर्थात् सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति का नाम समिति है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि में भी समिति का इस प्रकार से उल्लेख मिलता है, 'प्राणि पीड़ा परिहारार्थं सम्यगयनं समितिः" अर्थात् प्राणी पीड़ा के परिहार के लिए सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करना समिति है।

श्रमण संस्कृति में समिति के पाँच प्रकार बताये गये हैं यथा—

"इरिया भासा एसणा जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।
संजमसोहि णिमित्ते खंति जिणा पंच समिदीओ।"

अर्थात् ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-निक्षेपणसमिति और प्रतिष्ठापन समिति। इन्हीं समितियों के बीच प्रत्येक प्राणी अपने कर्म-कौशल को हल करता है। यहाँ ईर्यासमिति के विषय में संक्षिप्त विचार करते हुए उसकी पद यात्रा में उपयोगिता क्या है ? पर विचार करेंगे—

आवागमन के समय मार्ग में विचरण करने वाले किसी भी प्राणी का किंचित् अहित न होने देना ईर्यासमिति कहलाती है। "फासुयमग्गेण दिवा जुवं तरप्पहेणा सकज्जेण। जंतूण परिहरति इरियासमिदी हवे गमणं" अर्थात् प्रासुक मार्ग से दिन में चार हाथ प्रमाण देखकर अपने कार्य के लिए प्राणियों को पीड़ा नहीं देते हुए संयमी का जो गमन है, वह ईर्यासमिति है।

ईर्या का अर्थ चर्या से है। केवल गमनागमन ही नहीं किन्तु सोना, उठना, बैठना, जागना आदि सभी प्रवृत्तियाँ ईर्या के अन्तर्गत हैं और इन प्रवृत्तियों के घटित होने पर कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होनी चाहिए जिससे किसी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट या भय हो। इन प्रत्येक प्रकार की प्रवृत्ति के पीछे महत्व उसके उद्देश्य पर निहित होता है। अर्थात् गमन का उद्देश्य क्या है ? उसे कहाँ जाना है ? क्या वहाँ जाने से उसके दर्शन, ज्ञान और चारित्र की अभिवृद्धि होनी है ? गमन के समय उसके चित्त की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसी स्थिति है ? वह जिस उद्देश्य से जा रहा है, विचारों के विरोधी विषय क्या उसके भावों को गर्त्त की ओर तो नहीं ले जा रहे हैं ?

"ईयायां समितिः ईर्यासमितिस्तया। ईर्या विषये एकीभावेन चष्टे नमित्यर्थः" अर्थात् ईर्या का अर्थ गमन है। गमन विषयक सत् प्रवृत्ति ईर्यासमिति है। ईर्यासमिति की विशुद्ध आराधना व साधना के लिए चार आलम्बनों का ध्यान रखना आवश्यक है— अवस्सिया, काल, मार्ग और यतना। ये चारों आलम्बन/बातें ईर्यासमिति को सम्पुष्ट करने में रामबाण का कार्य करती हैं।

साधक की साधना रत्नत्रय की प्राप्ति हेतु होती है। यही उसका लक्ष्य होता है। वह इस लक्ष्य को पाने के लिए अर्थात् रत्नत्रय (दर्शन, ज्ञान और चारित्र) की अभिवृद्धि के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान को गमनागमन करता है। वह बिना आवश्यक कार्य के उपाश्रय से बाहर नहीं जाता और यैन-केन-प्रकारेण उसे जाना ही पड़ जाए तो जाने से पूर्व वह अवस्सिया का तीन बार उच्चारण करता है। यह उसकी समाचारी है और इसी को ईर्यासमिति का आलम्बन कहा जाता है।

ईर्यासमिति का दूसरा आलम्बन 'काल' कहा जाता है। काल अर्थात् समय। ईर्यासमिति का पालन दिन में हो सकता है रात्रि में नहीं। इसीलिए रात्रि में किया जाने वाला विहार निषेध माना गया है। आचार्यों ने श्रमण का विहार-काल नौ कल्प में बाँटा है। वह चातुर्मास को छोड़कर किसी भी स्थान पर एक मास से अधिक की अवधि नहीं व्यतीत कर सकते हैं। इस प्रकार आठ मास के आठ कल्प और चातुर्मास का एक कल्प, कुल मिलाकर नौ-कल्प की काल-लब्धि का निर्धारण हुआ है।

ईर्यासमिति का तीसरा आलम्बन 'मार्ग' कहा जाता है। इसे एक चार्ट के द्वारा दर्शाया जा सकता है—

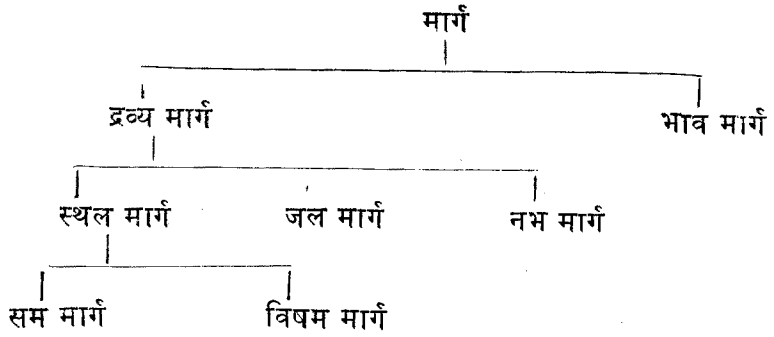

साधक को सम मार्ग पर चलना चाहिए, विषम मार्ग पर नहीं। विषम मार्ग में चलने से विराधना की सम्भावना रहती है। ऐसे मार्ग पर चलने से प्रायः पथ-भ्रम या दिग्-भ्रम हो सकता है जिससे साधक उन्मार्ग की ओर उन्मुख हो सकता है। जिस मार्ग से जाने में मानसिक, वाचिक और कायिक क्लेश की सम्भावना हो सकती है उस मार्ग से भी नहीं जाना चाहिए। जल मार्ग पर चलना भी जैन संस्कृति में मना बताया गया है। प्राणी विज्ञान की दृष्टि से जल की एक बूंद में असंख्य जीव होते हैं और यदि जैन साधु जल-मार्ग से जाते हैं तो असंख्य जीवों की विराधना सुनिश्चित हो जाती है। अतः वे जल मार्ग से नहीं जाते। किन्तु विशेष परिस्थिति में वे जल में जा सकते हैं जैसे वर्षा हो रही हो और मल-मूत्र के वेग को रोकना सम्भव नहीं हो (क्योंकि उसको रोकने से अनेक रोगों की सम्भावना रहती है तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औषधि आदि में भी अनेक दोष निहित होते हैं) या संध्या के पूर्व उन्हें अपने स्थान पर पहुँचना आवश्यक हो आदि। इसी प्रकार, आकाश मार्ग का उपयोग भी निषिद्ध माना गया है। साधु को मन, वचन और कर्म तीनों से शुद्ध होकर भाव मार्ग से लक्ष्य प्राप्त्यर्थ यात्रा करनी चाहिए। यही चारों आलम्बन ईर्यासमिति के घटक भी कहे जा सकते हैं।

पद-यात्रा से तात्पर्य पैदल मार्गी होना है। पद-यात्रा का जैन धर्म में जो प्रावधान निहित किया गया है उसमें ईर्यासमिति पूर्णरूपेण विदोहित होती है। "मग्गुज्जीवय ओगालंबण सुद्धीहिं इरिय दो पुणिणो। सुत्ताणुवीचि भणिया इरियासमिदी पवयणम्मि।" अर्थात् मार्ग, नेत्र, सूर्य का प्रकाश ज्ञानादि में यत्न, देवता आदि आलम्बन—इनकी शुद्धता से तथा प्रायश्चित्तादि सूत्रों के अनुसार गमन करना ही ईर्यासमिति के अनुसार पद-यात्रा कहलाती है।

लोक दृष्टि और पद-यात्रा

आज हम प्रगतिशील युग में विचरण कर रहे हैं जहाँ व्यक्ति कार, बस या रेल से ही यात्रा नहीं करता अपितु उसकी यात्रा आकाश मार्गीय यान और वायुयान से भी होती है। तब फिर ऐसी विराट और वृहद् यात्रा में सावधानी का सर्वव्यापी होना परमावश्यक है जिसे हम प्रायः भूल गए हैं। आज सड़क पर जिस पर होकर हम यात्रा करते हैं लिखा होता है "सावधानी हटी और दुर्घटना घटी" "जरा रुककर चलिए, आगे पुल है" "धीरे चलिए, सुरक्षित पहुँचिए" आदि-आदि अनेक बोर्ड लगे होते हैं। क्या कभी सोचा है कि ऐसा क्यों लिखा होता है? क्या हम आँख बन्दकर अपनी यात्रा तय करने लगे हैं? नहीं, हमने अपनी यात्रा में ईर्यासमिति को छोड़ दिया है जिससे न केवल हम स्वयं अपितु यात्रा करने वाला प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी यात्रा से भयभीत हो गया है। पता नहीं कब टकरा जाएँ और की गयी सारी की सारी यात्रा निष्फल हो जाए। हम चाहें पैदल चलें या वायुयान से इससे कोई फर्क नहीं पड़ता किन्तु हम जब भी यात्रा करें, हम विवेकशील होकर, संयत होकर यात्रा करें। हमारी यात्रा का मूलोद्देश्य दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों त्रिवेणियों का संवर्धन निहित हो जो ईर्यासमिति के चारों आलम्बनों के प्रयोग पर सम्भव है। तभी हमारी यात्रा सार्थक सिद्ध हो सकेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. (क) जैन आचार : सिद्धान्त और स्वरूप—देवेन्द्रमुनि शास्त्री।
   (ख) मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ।
2. निशीथ भाष्य सूत्र।
3. भगवती सूत्र।
4. उत्तराध्ययन।
5. दशवैकालिक।
6. कल्पसूत्र।
7. आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति।
8. स्थानांग।
9. राजवार्तिक।
10. नियमसार।
11. प्रवचनसार।
12. तत्त्वार्थसूत्र।
13. द्रव्यसग्रह।
14. समयसार।
15. मूलाचार।
16. सर्वार्थसिद्धि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org